THE TIMES OF INDIA

Date:29-07-23

Mussoorie Misery

Tax tourists, tame developers, save mountains

TOI Editorials

As much as this year's monsoon has battered the mountain states of Himachal Pradesh and Uttarakhand, a lot of the damage has been decades in the making. Now NGT has ordered the Dhami government to follow 19 recommendations for saving Mussoorie from destruction by construction and tourism, and this needs to be done regionwide. Regulate the number of tourists, charge them, use these funds for waste management and for monitoring various construction activities. The question is whether the other interests that have time and again undermined the interests of the mountains, can finally be overridden. That will need the Himachal, Uttarakhand and central governments all showing strong political will and acting in concert.

This week fresh cracks have been reported from Joshimath even as MoS environment has told Parliament that it is for the state government to act on the recommendations of the Mishra committee. But this committee's well-known 1976 warnings about local vulnerabilities have been shrugged off not just by local projects but also national prestige projects. The devastating 2013 Kedarnath floods didn't impel course correction either.

Back to Mussoorie, despite a 2001 study having found its carrying capacity to be saturated, tourist arrivals increased by 255% between 2000-2019. To accommodate yet more tourists, mountains are still being blasted, hydrology is still being ignored, caps on Chardham yatra are being rolled back. This is very risky short-termism in the age of multiplying extreme weather events. It doesn't serve tourists well either. It makes their travels unattractive and unsafe. Nobody climbs higher and higher to meet polluted air, traffic jams and deadly landslides.

THE HINDU

Date:29-07-23

Needless move

By allowing ED chief's continuance, the SC has undermined its own authority

Editorial

It comes no more as a shock or surprise if the Supreme Court is seen as deferring excessively to the government's wishes. The order allowing Sanjay Kumar Mishra, head of the Enforcement Directorate (ED), to continue till September 15 at the Centre's request is needlessly accommodative. It was only on July 11 that the Court declared illegal the extensions given to Mr. Mishra in 2021 and 2022. At the same time, he was permitted to continue till July 31 to ensure a smooth transition. Yet, without any submission that the process to select his successor has been set in motion, the Court has invoked an undefined "larger national interest" to allow him to go on up to September 15. It was a self-serving application in the first place. The ostensible reason that the government finds his services indispensable is that he is helming the country's efforts to demonstrate its framework to counter money laundering and the financing of terrorism during a country review before the Financial Action Task Force (FATF). The multilateral body adopts a mutual evaluation system and India's ongoing review will go on until June 2024, when the final evaluation report may be considered at a likely plenary discussion on its compliance status. The government sought an extension of his services until October 15, presumably because the country's agencies and institutions may be ready by then for an on-site visit by an FATF delegation.

As the agency that administers the law against money laundering, the ED may have a key role in preparing the country's presentation, but it is difficult to believe that the process depends on one individual. Even if it were so, nothing prevented the government from utilising Mr. Mishra's services for FATF purposes alone, while leaving the directorate's routine activities under his successor. In any case, various agencies and authorities are involved in framing the country's policies on money laundering and terrorism financing. It is unfortunate that the Court did not countenance arguments that highlighted these points. It did raise questions as to how one person could be indispensable, but ultimately chose to allow him to continue for some more time. One can understand the argument that the country's image depends on a positive FATF evaluation, but the claim that not giving Mr. Mishra an extension might result in a "negative image" is quite incomprehensible. India's credentials will be evaluated on its laws, systems and compliance with global standards and not on who prepared the report. The Court's permissiveness detracts from its resolve to hold the government to account for actions that it had itself declared illegal.

दैनिक भास्कर

Date:29-07-23

मणिपुर की आग को पूर्वोत्तर में फैलने से रोकना होगा

संपादकीय

मणिपुर की तीन माह पुरानी सामुदायिक हिंसा मिजोरम तक पहुंच गई है। नगालैंड दूर नहीं है। असम सहित पूर्वोत्तर के अन्य राज्य भी इसकी चपेट में आ सकते हैं। ध्यान रहे कि यह इलाका चीन के अलावा कई देशों से सटा है, लिहाजा सामरिक दृष्टिकोण से अहम है। इसमें कोई दो राय नहीं कि इस स्थिति को बदतर बनाने में वहां की राज्य सरकार की अक्षमता जिम्मेदार रही है। लेकिन प्रश्न यह है कि केंद्र सरकार क्या कदम उठा रही है? फिर इस गृहयुद्ध वाले राज्य में तो केंद्रीय गृहमंत्री गए भी थे और आश्वासन भी दिया था। लेकिन सभ्य समाज को शर्मसार करने वाली घटनाएं बढ़ती रहीं। 4 मई को घटी घटना और उसके बाद वायरल हुए उस वीडियो ने पूरे देश को शर्मसार कर दिया। रही-सही कसर पुलिस, प्रशासन और राज्य सरकार ने पूरी कर दी। सरकार के वकील ने आश्वासन दिया कि केंद्र और राज्य की सरकारें कदम उठा रही हैं और स्थिति पर नियंत्रण हो जाएगा। आरोप है कि पुलिस मूक दर्शक बनी रही। अब वायरल वीडियो वाले मामले की जिम्मेदारी केंद्र ने सीबीआई को सौंपी है। सीबीआई अपने तरीके से कार्रवाई करेगी, लेकिन मूल प्रश्न बरकरार हैं। इस राज्य की संवेदनशीलता को देखते हुए इसका स्थाई समाधान निकालने की जरूरत है।

Date:29-07-23

आलोचनाओं के बावजूद अभी बने रहेंगे बीरेन सिंह

शीला भट्ट, (वरिष्ठ पत्रकार)

मणिपुर की जमीनी स्थिति समझने के लिए कुछ तथ्यों और संगीन सच्चाइयों पर नजर डालना जरूरी है। पहली बात यह है कि नरेंद्र मोदी और अमित शाह के द्वारा अभी तक दिए गए बयानों से स्पष्ट संकेत मिलता है कि मुख्यमंत्री एन. बीरेन सिंह को बर्खास्त नहीं किया जाएगा। जब 60 विधायकों की विधानसभा में 54 विधायक एनडीए के हों तो बीरेन को बर्खास्त करने की कोई राजनीतिक बाध्यता नहीं है। दूसरे, पूर्वोत्तर के छोटे राज्यों में राजनीतिक वर्ग की चाहे जो विचारधारा हो, अमूमन वह केंद्र में सत्तारूढ़ पार्टी से बिगाड़ नहीं करना चाहता है। जब केंद्र में कांग्रेस का राज हुआ करता था तो पूर्वोत्तर की अनेक छोटी पार्टियां कांग्रेस की ही लाइन पर चलती थीं। मणिपुर के राजनीतिक-वर्ग के हित 2024 के लोकसभा चुनाव-परिणामों से जुड़े हैं। जितना छोटा राज्य होता है, उसमें अच्छे नेताओं की उतनी ही कमी होती है।

मणिपुर में भाजपा के पास बीरेन से बेहतर कोई अन्य नेता नहीं है। हालांकि सीआरपीएफ के पूर्व प्रमुख कुलदीप सिंह को मणिपुर भेजकर अमित शाह ने बीरेन सिंह के पर जरूर कतर दिए हैं।

दु:खद सच्चाई यह है कि मणिपुर की त्रासद घटनाओं के बाद बीरेन सिंह मैतेइयों के और ताकतवर नेता बनकर उभरे हैं। शुरू में जब मणिपुर कोर्ट का विवादित ऑर्डर आया और कुकी समूह अधिकाधिक संगठित होने लगे तो मैतेई असुरक्षित महसूस करने लगे थे और बीरेन सिंह ने इसी का दोहन किया। वास्तव में पिछले कुछ महीनों से पूर्वोत्तर के उभरते हुए राजनीतिक-सितारे हेमंता बिस्वा सरमा से उनके सम्बंध अच्छे नहीं थे और असम राइफल्स की भूमिका को भी मणिपुर पुलिस द्वारा पसंद नहीं किया जा रहा था। बीरेन को पार्टी की प्रादेशिक इकाई की ओर से भी असहमतियों का सामना करना पड़ रहा था और कुकी विधायकों के वे निशाने पर थे। आज यह स्थिति है कि अगर मणिपुर में हिंसा की और घटनाएं होती हैं तो जरूर बीरेन सिंह मोदी-शाह के लिए असुविधाजनक बन जाएंगे, लेकिन अगर मणिपुर राष्ट्रीय खबरों से दूर हो जाता है तो बीरेन सिंह राजनीतिक रूप से पहले से और मजबूत होंगे। भाजपा को मणिपुर में अपना एक योगी आदित्यनाथ मिल जाएगा। वे स्थानीय हिंदुओं के सबसे ताकतवर नेता के रूप उभरेंगे।

मणिपुर में भाजपा इसलिए भी नाजुक स्थिति में हैं, क्योंकि 2022 के विधानसभा चुनावों में भाजपा ने कुकी जनजातियों से कई वादे किए थे। आज अगर वहां भाजपा सत्ता में है तो इसीलिए क्योंकि उसे जनजाति-समूहों के खासे वोट मिले हैं और वे ही आज वहां जारी हिंसा के शिकार हो रहे हैं। ऐसे में मोदी कोई स्पष्ट रुख नहीं अख्तियार कर सकते हैं, क्योंकि कुकी जनजातियां और मैतेई- दोनों ही पड़ोसी राज्यों में भी फैले हैं। उनके किसी भी बयान का असर मणिपुर के साथ ही मिजोरम, नगालैंड और मेघालय में भी भाजपा के राजनीतिक भविष्य पर पड़ सकता है। वहीं अगर बीरेन सिंह को हटाया जाता है तो भाजपा को हिंदुओं के प्रतिकार का सामना करना पड़ सकता है। असम को छोड़ दें तो पूर्वोत्तर के राज्यों में वोटरों की किसी एक पार्टी के प्रति प्रतिबद्धता नहीं होती।

यह भी याद रखें कि मणिपुर की महाभारत केवल जमीन के लिए है। इम्फाल घाटी राज्य के बीचोबीच है और वह मात्र 1864 वर्ग किमी का है। यहां मैतेई रहते हैं, जो कि राज्य की आबादी का 52% हैं। जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में 34 जनजाति-समुदाय रहते हैं, जिनमें कुकी और नगा भी हैं। वहां मणिपुर की 90% भूमि है। जमीन और लोगों का यह ऐतिहासिक रूप से असंतुलित-विभाजन है। मैतेई लोग अपने ही राज्य के 90% एरिया में जमीनें तक नहीं खरीद सकते हैं। दूसरी तरफ, आदिवासियों को भी अपनी भूमि और आजीविका का बचाव करना है। प्रधानमंत्री तो क्या, कोई भी स्थानीय नेता इस समस्या का तुरत-फुरत में समाधान नहीं खोज सकता। मणिपुर का समाज आपस में बहुत बुरी तरह से विभाजित है और मौजूदा हिंसा से हालात और बदतर ही हुए हैं। संघ ने भी अभी तक वहां धर्मांतरण और भाषा से सम्बंधित मसलों पर ही काम किया है। कुकी लोग अफीम की खेती में भी बड़े पैमाने पर संलिप्त हैं, जिससे ड्रग-ट्रैफिकिंग में भी मणिपुर महत्वपूर्ण हो जाता है। अंतरराष्ट्रीय ड्रग-रूट चीन-म्यांमार-मणिपुर-बांग्लादेश-खाड़ी देशों का है।

भाजपा के हिंदुत्ववादी कैडर के पास अभी मणिपुर संघर्ष का कोई तात्कालिक समाधान नहीं है, लेकिन उसे लगता है कि अगर बीरेन सिंह वहां बने रहे तो पार्टी भी अपना अस्तित्व कायम रख पाएगी। इन मायनों में मणिपुर में भले ही भाजपा की नैतिक हार हुई हो, लेकिन अगर वह इस संकट का सामना कर पाई तो वहां अपना एक नया राजनीतिक अध्याय भी खोल सकेगी!

Date:29-07-23

कोविड के बाद भारत के मेडिकल-टूरिज्म में उछाल

नीरज कौशल, (कोलंबिया यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर)

भारत में मेडिकल टूरिज्म तेज गति से बढ़ रहा है। आज भारत में जिन 10 देशों से सर्वाधिक संख्या में मेडिकल टूरिस्ट आ रहे हैं, उनमें से 9 ऐसे हैं, जहां पर मुस्लिम बहुसंख्यक हैं- बांग्लादेश, अफगानिस्तान, इंडोनेशिया, ओमान, तुर्किये, इराक, यूएई, सूडान और नाईजीरिया। सूची में दसवां नाम हिंदू बहुसंख्या वाले देश नेपाल का है।

भारत में बहुसंख्यकवाद की पैरोकारी करने वाले इस तथ्य से हैरान जरूर होंगे, अलबत्ता यह मेडिकल-जगत में भारत के बढ़ते रुतबे का ही परिचायक है। सत्तारूढ़ दल के नेताओं और कार्यकर्ताओं द्वारा खुलकर मुस्लिम-विरोधी बातें कहने के बावजूद मुस्लिम बहुसंख्यक देशों से इतनी बड़ी संख्या में मेडिकल टूरिस्टों का भारत आना यह बताता है कि हमारे हेल्थकेयर-प्रदाताओं की इन देशों में बड़ी प्रतिष्ठा है और मुस्लिम रोगी भारत के अस्पतालों में इलाज कराने को अपने लिए सुरक्षित भी समझते हैं। वे किसी अन्य बड़े मेडिकल टूरिस्ट डेस्टिनेशन के बजाय भारत को अगर चुन रहे हैं तो इसका कारण भारत के सुपर-स्पेशियलिटी अस्पतालों द्वारा वैश्विक-मानकों और किफायती दरों पर गुणवत्तापूर्ण चिकित्सा-सुविधाएं मुहैया कराना है। साथ ही हमारे यहां बेहतरीन डॉक्टर्स और आला दर्जे के उपकरण भी होते हैं। मुस्लिम मरीजों को भारत में सांस्कृतिक रूप से भी अधिक सहज महसूस होता है। मेडिकल टूरिज्म नौकरियां सृजित करता है, वह विदेशी मुद्रा लाता है और भारत के हेल्थकेयर सेक्टर को मेडिकल टेक्नोलॉजी में और बेहतर प्रदर्शन करने के लिए भी प्रेरित करता है। इससे इन देशों के साथ ही दुनिया में भी भारत की सॉफ्ट-पॉवर बढ़ती है। साथ ही, मुस्लिम-देशों से भारत का जितना मेलजोल बढ़ेगा, देश में मुस्लिम-विरोधी बातें करना उतना ही कठिन होता चला जाएगा।

मोदी सरकार की महत्वाकांक्षा है भारत को मेडिकल टूरिज्म के क्षेत्र में दुनिया में नम्बर वन बनाना। विश्व टूरिज्म इंडेक्स के मुताबिक, हम आज दसवें पायदान पर हैं। ग्लोबल मेडिकल वैल्यू ट्रेड में हमारा योगदान अभी महज 6% है और इस क्षेत्र में हमें एक लम्बी दूरी तय करना है। दुनिया की 1000 हेल्थकेयर फेसिलिटीज़ की तुलना में भारत के पास केवल 40 ही हैं, जिन्हें जॉइंट कमीशन इंटरनेशनल के द्वारा मान्यता दी गई है। यह गुणवत्तापूर्ण हेल्थकेयर और रोगियों की सुरक्षा के मानकों का एक जाना-माना सूचकांक है। इन तमाम आंकड़ों के बावजूद हाल के समय में भारत में मेडिकल टूरिज्म में नाटकीय बढ़ोतरी हुई है। कोविड के बाद, 2022 में, भारत में मेडिकल टूरिस्टों की संख्या बढ़कर 14 लाख हो गई, जो कि कोविड-पूर्व के आंकड़ों से दोगुनी से भी अधिक है। गत वर्ष मेडिकल टूरिज्म से भारत में 7 अरब डॉलर की विदेशी आय आई। भारत सरकार का लक्ष्य है इसे 2026 तक बढ़ाकर 14 अरब डॉलर कर देना और 2032 तक इसे बढ़ाकर 42 अरब डॉलर तक ले जाना। यह एक महत्वाकांक्षी लक्ष्य है, लेकिन याद रखें कि मेडिकल टूरिज्म दुनिया में सबसे तेजी से बढ़ते उद्योगों में से एक है, तो इस लक्ष्य को अर्जित करना असम्भव नहीं है।

दो तरह के मेडिकल टूरिस्ट होते हैं- पहले, वे धनी लोग जो अर्धविकसित या मध्य-आय वर्ग वाले देशों के नागरिक होते हैं और जो उन मेडिकल सुविधाओं के लिए दूसरे देशों की यात्राएं करते हैं, जो उनके अपने देशों में उपलब्ध नहीं होतीं। दूसरे हैं अमीर, औद्योगिक देशों के लोग, जो अपने देश की महंगी स्वास्थ्य-सेवाओं से बचने के लिए विकासशील देशों में किफायती दरों पर उच्चकोटि की स्वास्थ्य सुविधाएं प्राप्त करते हैं। भारत दोनों ही तरह के मेडिकल टूरिज्म से लाभान्वित होने की स्थिति में है।

हम दुनिया के दूसरे देशों से लोगों को अपने यहां स्वास्थ्य-सेवाओं के लिए आकृष्ट करना चाहते हैं, जो विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों का प्रतिनिधित्व करते हों। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी कहते हैं कि मेडिकल वैल्यू ट्रैवल और हेल्थ वर्कफोर्स की गतिशीलता एक स्वस्थ-पृथ्वी के लिए आवश्यक हैं। इसी के चलते अप्रैल में नई दिल्ली में 'वन अर्थ वन हेल्थ' प्रोग्राम शुरू किया गया था। शुभारम्भ अवसर पर प्रधानमंत्री ने भारत की वसुधैव कुटुम्बकम् की अवधारणा का हवाला दिया। लेकिन अगर दुनिया एक परिवार है तो भारत को भी एक ऐसे परिवार की तरह व्यवहार करना चाहिए, जिसमें धार्मिक अल्पसंख्यक और विभिन्न जाति-समूह भी शरीक हों। यह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक हिंदू बहुसंख्यकवाद के विचार को त्यागा नहीं जाता।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:29-07-23

राष्ट्रीय शोध संस्थान एक महत्त्वपूर्ण पहल

नौशाद फोर्ब्स, (लेखक फोर्ब्स मार्शल के सह-चेयरमैन और सीआईआई के पूर्व अध्यक्ष हैं।)

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने राष्ट्रीय शोध संस्थान (एनआरएफ) की स्थापना के प्रस्ताव पर मुहर लगा दी है और अब यह विधेयक के रूप में संसद में प्रस्तुत किया जाएगा। एनआरएफ की घोषणा चार वर्ष पहले हुई थी। हालांकि, इसके काम करने के तौर-तरीकों पर अब भी चर्चा चल रही है, मगर उत्साह जगाने वाले कुछ बिंदु जरूर हैं, साथ ही कुछ मोर्चों पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।

क्या करने की आवश्यकता है : भारत की तुलना दूसरे देशों से करने पर कुछ बातें तो साफ दिख जाती हैं। शोध एवं विकास (आरऐंडडी) पर भारत अपने सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का मात्र 0.6 प्रतिशत खर्च करता है, जो बेहद कम है। यह पिछले 40 वर्षों से एक ही स्तर पर है। इसकी तुलना में दक्षिण कोरिया, ताइवान, इजरायल, सिंगापुर और विशेषकर चीन काफी आगे निकल चुके हैं। भारतीय उद्योग जगत घरेलू आरऐंडडी में जीडीपी का 0.25 प्रतिशत निवेश करता है, जबकि वैश्विक औसत 1.4 प्रतिशत है। भारत सरकार आरऐंडडी पर जीडीपी का 0.3 प्रतिशत खर्च करती है, जो वैश्विक मानकों के दृष्टिकोण से ठीक ही माना जा सकता है। समस्या यह है कि दुनिया के अन्य देशों से उलट भारत में शोध विश्वविद्यालयों में नहीं होकर स्वायत्त सरकारी संस्थानों में होते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि उच्चतर शिक्षा प्रणाली में भारत शोध के लिए जीडीपी का मात्र 0.4 प्रतिशत हिस्सा आवंटित करता है। इन बातों पर विचार करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि हमें क्या दुरुस्त करना चाहिए। भारतीय उद्योग जगत को स्थानीय स्तर पर आरऐंडडी में अपना

निवेश कम से कम पांच के गुणक जितना बढ़ाना चाहिए (मैं अपने पिछले तीन मासिक स्तंभों में चर्चा कर चुका हूं कि यह कैसे किया जा सकता है)। इसके अलावा उच्च शिक्षा प्रणाली में सार्वजनिक वित्त पोषित शोध में आठ गुना की अनिवार्य बढ़ोतरी होनी चाहिए। एनआरएफ यहां महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

क्या है एनआरएफ : एनआरएफ वैज्ञानिक शोध के लिए एक कोष है, मगर तकनीकी शोध के लिए इसकी स्थापना का प्रस्ताव नहीं दिया गया है। केंद्र सरकार की तीन एजेंसियां- रक्षा, परमाणु ऊर्जा और अंतरिक्ष - मुख्यतः तकनीकी शोध के लिए हैं। यह विषय इस स्तंभ का का हिस्सा नहीं है। केंद्र सरकार आरऐंडडी पर जितना धन खर्च करती है उसका लगभग 20 प्रतिशत हिस्सा वैज्ञानिक शोध में जाता है। उच्च शिक्षा प्रणाली के बजाय सार्वजनिक वित्त पोषित शोध स्वायत्त प्रयोगशालाओं में रखकर हम अपार संभावनाओं का लाभ उठाने का मौका गंवा रहे हैं। इन संभावनाओं का लाभ उठाने की दिशा में एनआरएफ एक अच्छी शुरुआत है। एनआरएफ में कुछ आवश्यक प्रावधान किए गए हैं। इनमें अगले पांच वर्षों के दौरान 50,000 करोड़ रुपये (सालाना 10,000 करोड़ रुपये) उच्चतर प्रयोगशालाओं में शोध कार्यों के लिए दिए जाएंगे। स्वायत्त राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में काम करने वाले वैज्ञानिक उसी शर्त पर इस धन का लाभ उठा पाएंगे जब शोध कार्य एक शिक्षाविद् शोधकर्ताओं के साथ मिलकर होंगे। यह एक आवश्यक शर्त है। एनआरएफ प्रभावशाली बनाने के लिए इस शर्त को बिल्कुल कमजोर नहीं किया जाना चाहिए। सार्वजनिक एवं निजी उच्चतर संस्थानों में काम करने वाले शिक्षाविद् दोनों ही इसके योग्य हैं। मगर एक बार फिर यह गंभीर प्रश्न है। अमेरिका में नैशनल साइंस फाउंडेशन और नैशनल इंस्टीट्यूट्स ऑफ हेल्थ की तरफ से मिलने वाली रकम सार्वजनिक या निजी संस्थानों में अंतर नहीं करती है और इससे दुनिया की सबसे बड़ी उच्च शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ है। वित्त पोषण के तहत दी जाने वाली सालाना 10,000 करोड़ रुपये रकम उच्च शिक्षा प्रणाली में होने वाले शोध कार्यों को दोगुना कर देगी जिससे इसका हिस्सा जीडीपी का 0.04 प्रतिशत से बढ़कर 0.1 प्रतिशत हो जाएगा। इससे अंतर कम होता है मगर 0.35 प्रतिशत तक पहुंचने के लिए इसे और लंबा सफर तय करना होगा।

अंतर का ध्यान रखना जरूरी : एआरएफ के कुछ प्रावधान समस्याएं खड़ी कर सकते हैं। जब नई शिक्षा नीति एवं वित्त मंत्री के विभिन्न बजट भाषणों में 50,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किए जाने की घोषणा की गई थी तब इस पूरी रकम का इंतजाम सरकार को ही करना था। ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि दुनिया भर में उच्च शिक्षा में बड़े शोध कार्यों के लिए सरकार रकम मुहैया करा रही है। मेरा पसंदीदा उदाहरण मेरा पसंदीदा विश्वविद्यालय स्टैनफर्ड है, जो एक निजी विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालय ने 2022-23 में 2 अरब डॉलर खर्च किए थे। भारत में सभी उच्च शिक्षण संस्थान शोध कार्यों पर जितनी रकम खर्च करते हैं यह रकम उसके बराबर है। इनमें तीन चौथाई रकम अमेरिका की संघीय सरकार देती है। हमें भारतीय उद्योग जगत से यह अपेक्षा रखनी चाहिए कि आंतरिक आरऐंडडी पर वह अधिक से अधिक निवेश करें और इसके बाद ही वैज्ञानिक शोध पर व्यय के बारे में सोचे। भारतीय उद्योग जगत के अपने संस्थानों में शोध कार्यों पर अधिक ध्यान देने के बाद बाहर वित्त पोषण का दायरा बढ़ाना संभव हो सकता है। मगर स्टैनफर्ड के उदाहरण के अनुसार दीर्घ अवधि में भी ज्यादातर वैज्ञानिक शोध के लिए वित्त केंद्र सरकार को मुहैया कराना होगा।

तो क्या हम 50,000 करोड़ रुपये सार्वजनिक वित्त पोषण का वहन कर सकते हैं? हमें इसका वहन करना होगा और हम कर सकते हैं। सरकार ने सेमीकंडक्टर विनिर्माण के लिए 85,000 करोड़ रुपये के उत्पादन संबद्ध प्रोत्साहन की घोषणा की है। गुजरात में सेमीकंडक्टर पैकेजिंग संयंत्र लगाने के लिए ही हमने केवल एक कंपनी माइक्रॉन को 17,500 करोड़ रुपये देने की घोषणा की है। एनआरएफ का सालाना बजट 68,000 करोड़ रुपये और राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान का बजट 3.3 लाख करोड़ डॉलर है। इन आंकड़ों के अनुरूप हमें रकम का इंतजाम करने में कोई दिक्कत नहीं आनी चाहिए।

संचालन नहीं, उत्तरदायित्व पर होना चाहिए ध्यान : अब आखिरी महत्त्वपूर्ण बात यह रह जाती है कि एनआरएफ का संचालन कैसे होना है। प्रस्ताव के अनुसार इसका संचालन एक उच्च-स्तरीय बोर्ड करेगा जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करेंगे और शिक्षा मंत्री और विज्ञान एवं तकनीकी मंत्री इसके उपाध्यक्ष होंगे। पहली नजर में स्वयं प्रधानमंत्री का इसका प्रमुख होना एनआरएफ का महत्त्व दर्शाता है। मगर मैं एक वैकल्पिक संचालन संरचना का सुझाव दूंगा। किसी भी संस्थान के प्रभावी रूप से काम करने के लिए दीर्घकालिक संचालन की आवश्यकता होती है। मैं यह सोचकर हैरान होता हूं कि क्या भारत जैसे पेचीदा एवं विविधता वाले देश में प्रधानमंत्री या किसी मंत्री के लिए एक शोध कोष का लगातार संचालन एवं इस पर निगरानी संभव है! इसके बजाय एक समर्पित एवं सक्षम पेशेवर की अध्यक्षता में एक पूर्ण पेशेवर बोर्ड (अफसरशाह नहीं) के माध्यम से इस कोष का संचालन कहीं अधिक प्रभावी होगा। हां, बोर्ड प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल के प्रति उत्तरदायी हो तो इसमें कोई हर्ज नहीं है।

एनआरएफ एक क्रांतिकारी बदलाव है। अगर यह ठीक ढंग से काम करे तो हमारी उच्चतर शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता में बड़ा सुधार हो सकता है। इसके साथ ही वैज्ञानिक शोध से आवश्यक नतीजे भी सामने आ सकते हैं। एनआरएफ में निहित क्षमता का पूर्ण लाभ उठाने के लिए हमें पर्याप्त एवं तेजी से बढ़ती सार्वजनिक वित्त की उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी। इसके साथ ही सार्वजनिक एवं निजी दोनों शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षाविदों के लिए इसे विशेष रूप से सुरक्षित रखा जाना चाहिए। इन दोनों की जवाबदेही तय कर हम इसकी क्षमता का पूर्ण लाभ उठा पाएंगे। इस आलेख के अगले हिस्से में इस बात पर चर्चा होगी कि भारत में नवाचार को बढ़ावा देने के लिए एनआरएफ को किन विशेष कार्यों के लिए वित्त मुहैया करना चाहिए।

जनसत्ता

Date:29-07-23

नकली का कारोबार

संपादकीय

हमारे देश में चाहे भी कोई क्षेत्र हो, नकली का कारोबार उभर ही आता और फलना-फूलना शुरू कर देता है। इस पर नकेल कसने की कोशिशें की जाती हैं, मगर वे कारगर साबित नहीं हो पातीं। फिल्म निर्माता लंबे समय से मांग करते रहे हैं कि उनकी फिल्मों की अनधिकृत प्रतियां बना कर बेचने यानी पाइरेसी का धंधा करने वालों पर नकेल कसने के लिए कड़ा कानून बनाया जाए। हालांकि पाइरेसी के खिलाफ पहले से कानून था, मगर उसका असर नक्कालों पर नहीं पड़ रहा था, इसलिए इसे और कड़ा करने की जरूरत महसूस की जा रही थी। आखिरकार चलचित्र (संशोधन) विधेयक 2023 ध्वनिमत से राज्यसभा में पारित हो गया। इसमें फिल्मों के प्रमाणन की प्रक्रिया को भी आसान बनाने का प्रावधान किया गया है। दरअसल, एक अनुमान के मुताबिक पाइरेसी की वजह से फिल्म उद्योग को हर साल बीस हजार करोड़ रुपए का नुकसान होता है। इसलिए इसे लेकर चिंता स्वाभाविक थी। फिल्मों की नकली प्रतियां बना कर बेचने वाले इसका कारोबार दूसरे देशों में भी करते हैं। जिस दिन फिल्म जारी होती है, उसके अगले ही दिन दूसरे देशों में उसकी प्रतियां बिकनी शुरू हो जाती हैं। फिल्म निर्माता चूंकि पहले अपनी फिल्में सिनेमाघरों में जारी करते हैं, उसके कुछ दिन बाद इंटरनेट से जुड़े

माध्यमों पर पेश करते हैं। इसके लिए बिक्री का एक तंत्र है। मगर जो दर्शक बाहर के देशों में हैं और वहां उन्हें सिनेमाघरों में वह फिल्म देखने को नहीं मिलती और तुरंत फिल्म देखना चाहते हैं, वे फिल्मों की नकली प्रतियों के बड़े खरीदार होते हैं।

हालांकि नकली प्रतियां बनाने का धंधा केवल फिल्मों तक सीमित नहीं है। किताबों, कलाकृतियों आदि की नकली प्रतियों का कारोबार भी बड़े पैमाने पर फल-फूल रहा है। सड़कों पर प्रसिद्ध और चर्चित लेखकों की किताबें सस्ते दामों पर बेचते लोग दिख जाते हैं। चूंकि विदेशों में छपी किताबों की कीमत भारतीय रुपए में बहुत अधिक होती है, जिससे आम पाठक के लिए खरीदना संभव नहीं हो पाता, इसलिए वे नकली प्रतियों के प्रति आकर्षित होते हैं। चर्चित चित्रकारों की तस्वीरों की नकली प्रतियां बनाने वालों का गिरोह तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काम करता है। इस तरह पाइरेसी के धंधे पर नकेल कसने की जरूरत न केवल फिल्मों, बल्कि हर तरह के रचनात्मक कामों पर महसूस की जाती है। इसके अलावा इलेक्ट्रानिक साजो-सामान की नकल का भी एक बड़ा कारोबार है। किसी भी साफ्टवेयर की नकली प्रति बना कर बाजार में बहुत सस्ती दर पर उपलब्ध करा दिया जाता है। इसका बहुत बड़ा बाजार है।

दरअसल, जब भी कोई रचना तैयार होती है, चाहे वह फिल्म हो, किताब हो, कलाकृति हो या संगीत की कोई रचना हो, उसमें एक रचनाकार की मौलिक प्रतिभा लगी होती है, जिसकी रक्षा के लिए दुनिया भर में कापीराइट कानून लागू हैं। ये कानून अंतरराष्ट्रीय स्तर पर लगभग समान भी हैं। ऐसे में नकली प्रतियां बनाना उस कानून का सरासर उल्लंघन है। कापीराइट कानून के तहत किसी कृति के किसी अंश का बिना इजाजत और बिना भुगतान किए व्यावसायिक इस्तेमाल करने पर भी दंड का प्रावधान है। मगर नक्कालों को इसकी कहां परवाह! उनका तंत्र अब इतना जटिल रूप में फैल चुका है कि कई बड़े अंतरराष्ट्रीय आपराधिक गिरोह इस धंधे को संचालित करते देखे गए हैं। इसलिए चलचित्र (संशोधन) अधिनियम का प्रभाव इस रूप में दर्ज होगा कि वह इस तंत्र पर किस तरह और किस हद तक लगाम लगा पाता है।

राष्ट्रीय सहारा

Date:29-07-23

विलुप्ति से बचाना होगा बाघ को

प्रत्यूष शर्मा

बीघ संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने के लिए हर साल 29 जुलाई को अंतरराष्ट्रीय बाघ दिवस मनाया जाता है। बाघ रॉयल प्रजाति है और विभिन्न संस्कृतियों जैसे हिंदू और बौद्ध धर्म में पूजनीय है। ये पर्यावरण पर्यटन के माध्यम से राजस्व उत्पन्न करने में भी मदद करते हैं। अवैध शिकार, अवैध व्यापार और आवास के नुकसान के कारण बाघों की संख्या में लगातार गिरावट आ रही है। बाघ को वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 की पहली अनुसूची, अंतरराष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ की लाल सूची (रेड लिस्ट) में 'विलुप्त होने के कगार पर' रखा गया है और वन्य जीवों एवं वनस्पतियों की लुप्तप्राय प्रजातियों के अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर अभिसमय (साइट्स) के पहले परिशिष्ट में रखा गया है।

बाघों की घटती आबादी के बारे में जागरूकता बढ़ाने के लिए वर्ष 2010 में रूस के सेंट पीटर्सबर्ग में हुए सम्मेलन में भारत समेत 13 देशों ने हिस्सा लिया था और यह घोषणा की थी कि बाघ-आबादी वाले देश वर्ष 2022 तक बाघों की आबादी को लगभग दोगुना करने का प्रयास करेंगे। पिछले कुछ वर्षों में बाघों और उनके निवास के आसपास रहने वाले लोगों के बीच टकराव की संख्या में वृद्धि हुई है। इसको रोकने के लिए गंभीरता से ध्यान देने की जरूरत है। बाघ संरक्षण के लिए हमारे समक्ष कई चुनौतियां हैं। कुछ लोग बाघों का शिकार पैसे कमाने के उद्देश्य से करते हैं। विश्व भर में बाघों के प्राकृतिक निवास स्थान का लगभग तिरानवे प्रतिशत हिस्सा नष्ट हो गया है। इन निवास स्थानों को ज्यादातर मानव गतिविधियों द्वारा नष्ट किया गया है क्योंकि वनों और घास के मैदानों को कृषि जरूरतों के लिए उपयोग किया जा रहा है। बाघों के प्राकृतिक निवास और शिकार स्थान छोटे होने के कारण कई बार बाघ, पालतू पशुओं को अपना शिकार बना लेते हैं और लोग अक्सर जवाबी कार्रवाई करते हुए बाघों को मार देते हैं। बाघों के संरक्षण के लिए भारत सरकार द्वारा कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। वर्ष 1973 में सरकार ने बाघ को भारत का राष्ट्रीय पशु घोषित किया। केंद्र प्रायोजित 'प्रोजेक्ट टाइगर' योजना वर्ष 1973 में शुरू की गई, जिसका उद्देश्य देश के राष्ट्रीय उद्यानों में बाघों को आश्रय प्रदान करना है। जब प्रोजेक्ट टाइगर शुरू हुआ, तो हमारे पास नौ बाघ अभयारण्य थे। आज हमारे पास 53 बाघ अभयारण्य हैं। उत्तर प्रदेश का रानीपुर 53वां बाघ अभयारण्य बनाया गया है। वर्ष 2023 में प्रोजेक्ट टाइगर के 50 पूरे हो गए हैं। वर्ष 2005 में टाइगर टास्क फोर्स की सिफारिशों के बाद पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के तहत 'राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण' नामक एक वैधानिक निकाय की स्थापना की गई, जो वर्ष 2006 में वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम,1972 के प्रावधानों में संशोधन करके की गई थी। विश्व वन्यजीव कोष के अनुसार, बीसवीं सदी की शुरुआत से ही अवैध शिकार जैसी गतिविधियों में बाघों की पंद्रह प्रतिशत आबादी विलुप्त हो गई थी। देश में प्रत्येक चार वर्ष में राष्ट्रीय बाघ संरक्षण प्राधिकरण द्वारा पूरे भारत में विभिन्न राज्यों के वन विभागों और भारतीय वन्यजीव संस्थान के साथ साझेदारी में बाघों की गणना की जाती है। वर्ष 2018 में 2967 बाघों के साथ ही भारत ने बाघों की संख्या को दोगुना करने के लक्ष्य को चार वर्ष पूर्व ही प्राप्त कर लिया। भारत दुनिया के 70 फीसद से अधिक बाघों का घर है। एम-स्ट्रिप (मोनिटिरंग सिस्टम फॉर टाइगर्स इंटेसिव-प्रोटेक्शन एंड इकोलॉजिकल स्टेटस) एप्लिकेशन का उपयोग करके पांचवें चक्र की बाघों की गिनती वर्ष 2022 में की गई थी। वर्ष 2022 में बाघों की संख्या बढ़कर 3167 हो गई है।

वर्ष 2016 में भारत और बांग्लादेश ने साझा प्रयास से एक रिपोर्ट जारी की जिसमें कहा गया था कि सुंदरबन में बढ़ते समुद्री स्तर के कारण 96 फीसद जमीन के डूबने का खतरा बना हुआ है। समुद्री जलस्तर बढ़ने से बाघ आबादी वाले इलाकों की तरफ कूच करेंगे, जिससे मानव और वन्यजीवों के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा हो सकती है। कई टाइगर रिजवरे में अवैध शिकार रोधी अभियानों के लिए विशेष बाघ सरंक्षण बल तैनात किए गए हैं। ई-र्वड परियोजना के तहत बाघों के संरक्षण हेतु उनकी रखवाली और निगरानी की जा रही है। इस कार्य के लिए मानव रहित हवाई वाहनों जैसी उन्नत तकनीक का उपयोग किया जा रहा है। हमें बाघों को विलुप्त होने से बचाना होगा। हमारा प्राथमिक लक्ष्य बाघों के प्राकृतिक आवासों की रक्षा के लिए एक वैिक प्रणाली को बढ़ावा देना और बाघ संरक्षण के मुद्दों के लिए जन जागरूकता और समर्थन बढ़ाना है। जहां संभव हो, स्थानीय समुदाय-आधारित संगठनों के साथ भागीदारी को मजबूत किया जाना चाहिए ताकि संघर्ष की स्थितियों को कम करने के साथ संरक्षण योजना और प्रयासों में भागीदारी को और ज्यादा बढ़ाया जा सके।

Live हिन्दुस्तान.com

Date:29-07-23

प्यार या नफरत

संपादकीय

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में दो ऐसी हत्याएं हुई हैं, जिनसे इंसानियत भी शर्मसार हो गई है। विवाह या प्रेम प्रस्ताव ठुकराए जाने के बाद हुई ये घटनाएं गहरी चिंता और चिंतन की मांग करती हैं। दक्षिण दिल्ली के एक पॉश इलाके में दिनदहाड़े लोहे की रॉड मारकर की गई हत्या ने कथित प्रेम और घृणा की परिभाषाओं को एक साथ झकझोर कर रख दिया है। 25 वर्षीया युवती मालवीय नगर में श्री अरबिंदो कॉलेज की छात्रा थी और उसके जीवन के समाप्त होते ही न जाने कितने सपनों का खून हो गया। दूसरे मामले, दिल्ली के डाबरी एक्सटेंशन में एकतरफा प्यार या नफरत में एक और हत्या हुई है। एक युवक ने महिला को गोली मार दी और फिर खुद को भी मार डाला। यह आपराधिक पागलपन नहीं, तो और क्या है?

किसी के जीवन में प्रेम और विवाह के अलावा भी बहुत कुछ होता है। यह भी बार-बार दोहराया जाता है कि पढ़ाई का समय सपने देखने और उसे साकार करने के संघर्ष का समय होता है। यह इसलिए भी बहुत दुख की बात है कि हमारे देश में अभी भी बहुत कम महिलाएं उच्च शिक्षा हासिल करने के लिए घर से निकल पाती हैं। ऐसी घटनाओं से न जाने कितने अभिभावक या लड़कियां हतोत्साहित होती हैं। न जाने कितने सपनों पर काली छाया पड़ जाती है और न जाने कितनी लड़कियों के पैरों में घरेलू बेड़ियां डल जाती हैं? जो जाहिल अपराधी समझदारी, भलमनसाहत, इंसानियत का 'क ख ग' भी नहीं जानते और दूसरे की जिंदगी के साथ ही अपनी जिंदगी भी खराब कर लेते हैं, उन पर कानून का शिकंजा इतनी कड़ाई से कसना चाहिए कि दुनिया देखे। दिल्ली पुलिस की प्रशंसा करनी चाहिए कि उसने अपराधी युवक को पकड़ने में देरी नहीं की, लेकिन पुलिस को अपने स्तर पर पहले की तुलना में ज्यादा सावधान रहना होगा। आज के समय में किसी एकतरफा प्यार का आपराधिक रूप से मुखर होना कानून-व्यवस्था के लिए बहुत गंभीर चुनौती बनता जा रहा है। महिला सुरक्षा संबंधी कानूनों की कदापि कमी नहीं है, पर ऐसे कानून का लाभ किसी भी महिला को तभी मिलेगा, जब वह पूरी तरह से सजग रहेगी। जिन इंसानी बस्तियों में समाज कमजोर पड़ चुका है, वहां तो लड़कियों को विशेष रूप से सतर्क रहने की जरूरत है। कोई संदेह नहीं कि सभी लड़कियां व महिलाएं सतर्क रहकर सुरक्षा कवच बना सकती हैं। समझना होगा कि प्यार और नफरत में क्या अंतर है। जो जाहिल इंसान स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व न मानकर केवल उपभोग का साधन मानता है, वही उसे नष्ट करने की सोच सकता है।

भले-बुरे, सही-गलत का भेद किए बिना हम रिश्तों और दूसरों की भावनाओं की कद्र कैसे कर पाएंगे? वैसे निराश होने के बजाय यह सतर्क होने का समय है। समाज में अभी भी एक बहुत बड़ा तबका है, जो दूसरे की खुशी को महत्व देता है। बहुत से भले लोग आज भी यह मानकर जीवन भर अपने दिल में प्यार संजोए रहते हैं कि मेरे नसीब में ऐ दोस्त तेरा प्यार नहीं, पर तू किसी और की हो न जाना, कुछ भी कर जाऊंगा मैं दीवाना वाली जो नई जमात पनप आई है, उससे कड़ाई से निपटने के अलावा और कोई उपाय नहीं है। महिला संगठनों और महिला आयोगों को केवल संज्ञान लेने से आगे

बढ़ना होगा। जहां एक ओर, महिलाओं की सुरक्षा संबंधी कानून व्यवस्था को चाक-चौबंद करना जरूरी है, वहीं बिखरते समाज में नई शालीनता, सभ्यता और संवेदना की बहाली भी अनिवार्य है।

Date:29-07-23

बाघों को बचाने में भारत ने साबित की अपनी बादशाहत

साकेत बडोला, (निदेशक, राजाजी राष्ट्रीय उद्यान)

कुछ सदी पहले तक दुनिया के बड़े हिस्से में बाघ पाए जाते थे। मगर बढ़ती मानव आबादी और प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ते कब्जे के कारण बाघों के वासस्थल में लगातार गिरावट आती गई, जिसके कारण विश्व में बाघों के पुरातन बसेरे में 95 फीसदी से ज्यादा की कमी आ चुकी है। कभी विश्व के एक बड़े हिस्से में राज करने वाला 'जंगल का बादशाह'; आज मात्र 13 देशों में सिमटकर रह गया है। इनमें से भी कुछ देशों में इनकी संख्या में गिरावट देखी गई है। तीन देशों में तो बीते कुछ वर्षों से बाघ का कोई निशान भी नहीं दिखा है। स्पष्ट है, अगर प्रकृति की इस बेहद खूबसूरत रचना को विलुप्त होने से बचाना है, तो इन 13 'बाघ-देशों' द्वारा की जाने वाली कोशिशें काफी नहीं होंगी, बल्कि समन्वित वैश्विक प्रयास की आवश्यकता होगी। बाघों को न सिर्फ उनके वासस्थल में सुरक्षित रखना होगा, बल्कि उनके अंगों के अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर भी अंकुश लगाना होगा, जो बाघों के अवैध शिकार का एक बड़ा कारण है।

आज भी कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंधों के बावज़ूद दुनिया के कई देशों में बाघ की हड्डियों और उसके अंगों से बने उत्पादों का दवाओं के रूप में प्रयोग होता है। बाघों की खाल और उससे बने फैशन उत्पादों की मांग बेशक कुछ कम हुई है, लेकिन अब भी कई स्थानों पर इसके लिए बाघों का शिकार किया जाता है। अच्छी बात है कि इन सब समस्याओं के बीच बाघों के संरक्षण के लिए किए जा रहे प्रयासों में भारत अग्रणी है। हमारा देश आज विश्व में जंगली बाघों का सबसे सुरक्षित और महत्वपूर्ण शरणस्थल माना जाता है। हम विश्व के 70 प्रतिशत से अधिक जंगली बाघों का घर हैं। ऐसे में, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि मौजूदा हालात में विश्व में जंगली बाघों का भविष्य बहुत हद तक भारत द्वारा किए जा रहे प्रयासों व उनकी सफलता पर निर्भर है।

विश्व में सर्वाधिक मानव जनसंख्या वाला देश कैसे अपने राष्ट्रीय पशु को संरक्षित व सुरक्षित रख रहा है, यह एक विस्मय करने वाला तथ्य है। एक समय यहां बाघ लुप्त होने की स्थिति में पहुंच गए थे, तब हमारी सरकार ने व्यवस्थित कार्रवाई शुरू की। वर्ष 1973 में नौ क्षेत्रों को चिह्नित करके बाघ परियोजना शुरू की गई। इसमें यह ध्यान रखा गया कि बाघों को उनके यथासंभव प्राकृतिक वासस्थल मिलते रहें। यह परियोजना केवल एक प्रजाति के संरक्षण का प्रयास नहीं था, बल्कि इसके माध्यम से संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र को सुरक्षित किए जाने की मंशा थी। धीरे-धीरे यह परियोजना व्यापक होती गई, और आज जब यह 50 साल पूरे कर चुकी है, तो इसमें संरक्षित क्षेत्रों की संख्या बढ़कर 53 हो चुकी है। आज अपने यहां बाघ संरक्षण के लिए नवीनतम तकनीकी व उपकरणों (सेस्मिक सेंसर, ड्रोन, इंफ्रारेड कैमरा

आदि) का इस्तेमाल हो रहा है। बाघों की गणना में अब कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) की मदद ली जा रही है। गिनीज बुक तक में भारत में वैज्ञानिक विधि से होने वाली बाघों की गणना को शामिल किया गया है।

आज देश में वन्यजीव पशु-चिकित्सकों का एक ऐसा काडर तैयार किया गया है, जो न सिर्फ बाघों को उनके वासस्थल में स्वस्थ रखने का काम कर रहा है, बल्कि मानव-वन्यजीव संघर्ष को कम करने व वन्यजीवों के पुनर्वास में भी सक्रिय है। बाघों के जीवन को सबसे अधिक खतरा उनके अवैध शिकार से है, जो मुख्यत: उसके अंगों की अंतरराष्ट्रीय बाजार में भारी मांग के कारण है। अत: भारत बाघ के अंगों से बने उत्पादों की मांग कम करने के लिए कई देशों के साथ समन्वय बनाकर प्रयास कर रहा है। इसी तरह, ईको-टूरिज्म को इस तरह का रूप दिया जा रहा है कि इससे उत्पन्न होने वाले रोजगार और आय का एक हिस्सा उन ग्रामीणों को मिले, जो बाघ के वासस्थल के समीप रहते हैं, ताकि मानव-वन्यजीव संघर्ष रोकने में मदद मिले। स्थानीय लोगों की जंगल पर निर्भरता भी कम की जा रही है।

जाहिर है, बाघ संरक्षण कोई एकरूपी कार्य नहीं है। इसके लिए दीर्घकालिक व्यवस्था व सभी को साथ लेकर चलने की पद्धति काम करती है। भारत ने इसमें अभूतपूर्व सफलता हासिल करके विश्व के सामने एक सफल मॉडल पेश किया है। आजादी के अमृतकाल में यह विश्व स्तर पर भारत का प्रकृति संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण योगदान है।